IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सामाजिक न्याय के अंबेडकरवादी प्रतिमान

सोहनलाल
सह अचार्य राजनीति विज्ञान विभाग
चौधरी बल्लू राम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय श्रीगंगानगर

शोध सार

मानव सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास में सामाजिक न्याय की अवधारणा की महती भूमिका होती है। उच्च वर्गीय विचारधारा जो पूर्णतया सामाजिक अन्याय की भावना पर आधारित है जो मानवाधिकारों के पूर्णतया विपरीत है। यह विडम्बना है कि उच्चवर्गीय संभ्रात वर्ग दलित समाज को अपने समतुल्य कदापि नहीं रखना चाहती। इस विचार आपके मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन है। यह जो विघटन की अवधारणा है सामाजिक अन्याय का केन्द्र बिन्दु है। समाज इस विघटन की इमारत को खड़ा किया गया है। इस इमारत को तोड़ना होगा। समावेशन की प्रक्रिया को अपनाते हुए ऐसी इमारत खड़ी करनी होगी। जिसमें वंचित वर्ग को समतुल्य बनाया जा सके। मानव मानव में सहयोग की भाव हो, सहानुभूति हो। सामाजिक न्याय की संकल्पना की मांग भी यहीं है कि समता मूलक समाज मानव कल्याण का कारक है। अंबेडकर ने कहा था कि मैं दलित जाति में पैदा हुआ हूं उसे मुक्ति दिलाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है, यदि मैं इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सका तो गोली मारकर अपना जीवन समाप्त कर लूंगा। यह पंक्ति सामाजिक न्याय के लिए किए गए संघर्ष के प्रति उनकी प्रतिबद्धता व समर्पण को दर्शाती है। समता, स्वतंत्रता, न्याय और कुटुम्बकम के आधार पर संपोषी समाज का निर्माण हो। समाज का प्रत्येक वर्ग स्वाभिमानी जीवन निर्वाह कर सके। जब तक अन्तर्कलह और निराशाजनक व्यवहार को समाप्त कर बंधुत्व के भाव को निर्मित नहीं किया जाता तब तक समस्त संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों में वर्णित सामाजिक न्याय का आदर्श कोरा कागज साबित होगा।

शब्द कुंजी

सामाजिक न्याय, वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता,स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, लोकतंत्र, संपोषी समाज।

शोध आलेख

मानव सभ्यता के इतिहास के अध्ययन से स्पष्टतः बोध होता है कि न्याय और अन्याय के बीच का विभाजन बहुत झीना सा है। न्याय और अन्याय का मापदंड सभी कालों में एक जैसा नहीं रहता है। हमारा जीवन शताब्दियों से शास्त्रीय निर्देशन में संचालित होता रहा है, लेकिन समय की बदलती धारा में आज लोकतांत्रिक संविधान हमारा पथ प्रदर्शक है। शास्त्रों में न्याय की अवधारणा एवं संवैधानिक न्याय की अवधारणा मूलतः भिन्न है। जो कार्य, प्रक्रिया एवं व्यवहार उस समय में न्याय पूर्ण माना जाता था। वर्तमान समय में उसे अन्याय कहा जाता है। जिसे वर्तमान परिपेक्ष्य में न्याय पूर्ण कहा जाता है, तब वे अन्याय पूर्ण कहे जाते थे। इस प्रकार न्याय का प्रश्न सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक नहीं है। यह बहुत कुछ सांस्कृतिक सापेक्ष है, जिन्हें हिंदू समाज न्यायिक मानता है। ऐसा जरूरी नहीं है कि मुस्लिम समाज भी उन्हें न्यायिक माने। प्राचीन काल में न्याय के निर्धारण का आधार ईश्वरीय था, लेकिन कालांतर में विज्ञान एवं तकनीक के विकास के साथ–साथ समाज में नवजागरण का सूत्रपात हुआ। फ्रांस की राज्यक्रांति हुई, जिसका जनजीवन पर व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। न्याय की अवधारणा मूलतः परिवर्तित हुई। न्याय की अवधारणा में तीन प्रकार के परिवर्तन परिलक्षित हुए –

1. न्याय का ईश्वरीय आधार समाप्त हो गया

2. विज्ञान में तर्क पर आधारित नैतिकता लौकिक कानून का आधार बनी

3. वंश, मूल, वर्ण एवं जाति के शास्त्रीय विशेषाधिकार समाप्त हुए

सामाजिक न्याय की धारणा का विकास हुआ। लोकतंत्र की स्थापना के साथ–साथ न्यायिक विकास के इस चरण में वैधानिक और न्यायिक अधिकार पूर्णतः जनमानस के हाथ में आ गए। सामाजिक न्याय की प्रकृति कमजोर की शक्तिशाली से रक्षा, मानव को मानव होने के नाते अधिकार, सुरक्षात्मक भेदभाव एवं कल्याणकारी राज्य की है।

डॉ. अंबेडकर का नाम आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय के प्रमुख उन्नायकों के रूप में अग्रणी है। उनके शब्दों में सामाजिक न्याय का अर्थ भी यही है कि ''Social Justice is based upon equality liberty and fraternity of all human beings. The aim of Social Justice is to remove all kinds of inequalities based upon cast, race, power, position and wealth. The Social Justice brings equal distribution of social, political and economical resources of the community.

भारत में सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु राजनैतिक एवं सामाजिक चिंतकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है इनमें राजा राम मोहनराय, स्वामी विवेकानंद, दयानंद, ज्योतिबा फुले, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नाम उल्लेखनीय है। डॉ भीमराव अंबेडकर ने अछूत परिवार में जन्म लेने के कारण सामाजिक भेदभाव और तिरस्कार की बहुत पीड़ा झेली थी। बहुत स्पष्ट शब्दों में अंबेडकर ने कहा कि, ''दलित जाति में पैदा हुआ हूं, उसे मुक्ति दिलाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है, यदि मैं इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सका तो गोली मार कर अपना जीवन समाप्त कर लूंगा। यह स्वीकारोक्ति सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और समर्पण को दर्शाती है। सामाजिक अन्याय के संघर्ष में वे शिक्षा को सशक्त माध्यम मानते थे उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924), डिप्रेस्ड क्लास एजुकेशन सोसाइटी (1928), पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी (1946) की स्थापना की। उनका मानना था कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति की एकमात्र कसौटी शिक्षा है। इसलिए उन्होंने पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी के तत्वावधान में मुंबई में सिद्धार्थ कॉलेज (1946) तथा औरंगाबाद में मिलिंद कॉलेज (1951) की स्थापना की। उनका कहना था कि हमारी गुलामी का एकमात्र कारण ज्ञानाभाव है। उन्होंने कहा था कि शिक्षा शेरनी का दूध है, जो पियेगा वह दहाड़ेगा। दलित वर्ग न्यायपूर्ण समाज की प्राप्ति तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह राजनैतिक शक्ति पर अधिकार नहीं जमा लेता। राजनैतिक शक्ति पर अधिकार जमाने के लिए आवश्यक है कि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हों। संघर्ष की राह पर बढ़ते हुए उन्होंने ऑल इंडिया शेड्यूल कास्ट फेडरेशन (1942) एवं इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की स्थापना की। उनके अनुयायियों द्वारा भारतीय रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना कर राजनीतिक संघर्ष का मोर्चा संभाला।

साइमन कमीशन, मुंबई लेजिस्लेटिव काउंसिल, गोलमेज सम्मेलन एवं संविधान सभा में जब भी कभी उन्हें अपना वक्तव्य रखने का अवसर दिया गया, उन्होंने दलितों के पक्ष में सशक्त और तार्किक रूप से उसे प्रस्तुत किया। दलितों की पृथक् प्रतिनिधित्व की मांग पर गांधी जी के अनशन करने पर होने वाली राष्ट्रव्यापी प्रतिक्रिया के कारण उन्होंने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए कांग्रेस एवं गांधी के साथ पूना पैक्ट (1932) किया, जिसके फलस्वरूप विधान मंडलों में दलितों के लिए आरक्षण एवं अन्य सुविधाएं मुहैया करवाई गई। दलितों को उद्धार के लिए अनेक योजनाएं क्रियान्वित करवाई गई। संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने हाशिये पर उपस्थित उपेक्षित समूह के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए। स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री के रूप में उन्होंने 'हिंदू कोड बिल' की रचना की। हिंदू नारी की मुक्ति के लिए हिंदू सामाजिक ढांचे के पुनर्गठन की दिशा में उनका अविस्मरणीय योगदान है। डॉक्टर अंबेडकर का मानना था कि आत्म सहायता सबसे उत्तम सहायता है। उन्होंने इतिहास से यह शिक्षा ली कि अन्याय उस समय तक नहीं मिटता, जब तक पीड़ित स्वयं उठकर उसकी समाप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता, जब तक किसी दास का अन्तःकरण स्वयं दासता के प्रति घृणा से प्रज्वलित नहीं होता, तब तक उसकी मुक्ति की कोई आशा नहीं की जा सकती। 'शिक्षित बनों', 'संगठित बनों' एवं 'संघर्ष करो' के नारे का उद्घोष कर हाशिये पर उपस्थित उपेक्षित, दलित वर्गों को आगे बढ़ने का मूल मंत्र दिया। डॉ. अम्बेडकर के देहावसान पर पंडित नेहरू ने कहा था कि हिंदू समाज में विद्यमान सभी अत्याचारों के विरुद्ध सशक्त विद्रोह के प्रतीक के रूप में उन्हें सदैव याद किया जाएगा। भारत सरकार द्वारा राष्ट्र के सर्वोच्च अलंकरण भारत रत्न से उन्हें 14 अप्रैल 1990 को सम्मानित किया गया। 1990–91 में उनकी जन्म शताब्दी 'सामाजिक न्याय' वर्ष के रूप में मनाई गई।

सामाजिक न्याय को स्थापित करने वाले अंबेडकरवादी प्रतिमान

प्रत्येक विचारक का जीवन दर्शन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि समस्याओं के समाधान में अहम भूमिका का निर्वहन करता है। जब भारत में लोग अंग्रेजों से राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग कर रहे थे। उस समय डॉक्टर अंबेडकर ने राजनीतिक स्वतंत्रता से पूर्व आर्थिक, सामाजिक समता एवं सामाजिक न्याय की वकालत की। वे सामंतवादी, ब्राह्मणवादी एवं जमीदारी प्रथा के विरुद्ध थे। उन्होंने भारत में व्याप्त अस्पृश्यता, जातिवाद सांप्रदायिकता, एवं ब्राह्मणवाद के विरुद्ध आंदोलन आरंभ किया। वैषम्यताओं से ग्रस्त करोड़ों उपेक्षित दलित, शोषित व्यक्तियों की मुक्ति के लिए डॉक्टर अंबेडकर संघर्षरत रहे। हिंदू समाज में उस समय इतने अंधविश्वास एवं रूढ़ीवादी परम्पराएं व्याप्त थी कि उनके विरुद्ध बोलने वाले किसी भी व्यक्ति को पागल और धर्म विरोधी करार दिया जाता था।

1. वर्ण व्यवस्था का विरोध

हिंदू समाज के संगठन का मूल आधार वर्ण व्यवस्था है। डॉ आंबेडकर की दृष्टि में यह व्यवस्था अवैधानिक है, क्योंकि इसमें बहुत सारी अनियमितताएं हैं।

- जैसे वास्तव में बिना वर्ग के समाज संभव नहीं हो सकता परंतु इस वास्तविकता को किसी समाज में आदर्श रूप प्राप्त नहीं हुआ। हिंदू वर्ण व्यवस्था में वर्ग स्थिति को आदर्श मान लिया गया कि अमुक वर्ग अन्य वर्गों से उच्च है। स्वर्ण हिंदुओं के यथार्थ को आदर्श स्वीकार कर लिया।
- प्लेटो ने भी संगठन में विश्वास कि किंतु ग्रीक निवासियों ने इसे कानून का रूप नहीं दिया। हिंदू समाज ही एक ऐसा एक ऐसा उदाहरण है, जिसे वर्गों को कानूनी आधार दिया गया अर्थात वर्ण व्यवस्था को वैधानिक घोषित किया गया।
- किसी समाज में वर्ग स्थिति को आदर्श नहीं माना गया। अधिकांशतः वर्गों को स्वभाविक माना गया हिंदू समाज में वर्णों को केवल संभावित तथा आदर्श ही नहीं माना, अपितु उन्हें अति पवित्र भी मान लिया गया।
- एक समाज में कितने वर्ग हो किसी सभ्य समाज ने इस पर अधिक बल नहीं दियां। वर्गों की गणना में धार्मिक आधारष्टि दृष्टि में नहीं रखा गया हिंदू समाज में धार्मिक दृष्टि से केवल चार ही वर्णों को गणना की गई।
- प्रत्येक समाज में विभिन्न वर्ग अपना अपना कार्य करने में स्वतंत्र हैं, जिस प्रकार की परिस्थितियां आती हैं, वे अपना कार्यक्रम बना लेते हैं; किंतु हिंदू सामाजिक व्यवस्था में एक निश्चित उतार–चढ़ाव है। प्रत्येक वर्ण को निश्चित व्यवसाय दे दिए गए हैं; जो उसका उल्लंघन करेगा वह दंड का भागी होगा।

डॉक्टर अंबेडकर के अनुसार वर्ण व्यवस्था में केवल श्रम विभाजन ही नहीं होता है, अपितु श्रमिकों का भी स्थाई विभाजन हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रत्येक सभ्य समाज को श्रम विभाजन की आवश्यकता है, किंतु कोई भी सभ्य समाज अपने श्रमिकों को स्थाई वर्गों में कभी भी विभाजित नहीं करेगा। और न कोई समाज अपने श्रमिकों को ऊंचा नीचा समझेगा। अन्य समाज में केवल व्यवसाय की भिन्नता हो सकती है न कि व्यवसाय के आधार पर। श्रमिकों की व्यवस्था में वास्तविक महत्व भेद का है, जो व्यवसाय के आधार पर किया जाता है। हिंदू समाज में जो व्यक्ति जैसा व्यवसाय करता है, उसे वैसा ही ऊंचा अथवा नीचा स्थान दिया जाता है। हिंदू सामाजिक व्यवस्था का यह सबसे बड़ा दोष है।

2. जाति व्यवस्था का विरोध

वे जाति व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। उनका मानना था कि जातिवाद से हिंदू समाज में अराजकता फैल चुकी है , इससे अपूरणीय क्षति हुई है। उन्होंने जाति भेद का खंडन करते हुए कहा ''जातिवाद के कारण हिंदुओं का नाश हुआ है वर्ण व्यवस्था के आधार पर हिंदू समाज का पुनर्गठन असंभव है। वर्ण व्यवस्था कानूनन बंद होनी चाहिए। वर्ण व्यवस्था के आधार पर हिंदू समाज का पुनर्गठन श्रेयस्कर नहीं है हिंदू समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता ऐसे धर्म के आधार पर संभव है। जिसका संबंध समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व से जुड़ा हुआ हो। शास्त्रों को जब भगवत वाणी मानने की मानसिकता समाप्त नहीं हो जाएगी तभी जाति और वर्ण का आधार नष्ट हो सकता है।

डॉक्टर अंबेडकर ने अपने पूरे चिंतन में यह सिद्ध किया है कि हमारे चिंतन का मूलाधार मनुष्य होना चाहिए। इस मनुष्य को उसके मानवीय अधिकार उपलब्ध करा देना हमारी नैतिक दायित्व है।

3. नारी जागरण

डॉक्टर अंबेडकर ने भारतीय नारी के पतन के लिए पूरी तरह से मनुस्मृति को जिम्मेदार ठहराया उन्होंने कहा कि मनु के कारण ही ब्राह्मणवाद का जन्म हुआ ब्राह्मणवाद ने स्त्रियों के विकास में बाधा उत्पन्न की किसी भी देश में सब नागरिकों का संवर्द्धन इस बात पर निर्भर करता है कि वहां की स्त्रियों को कितना सम्मानजनक जीवन प्राप्त है। प्राचीन इतिहास में शुक्राचार्य, बृहस्पति, चाणक्य, पतंजलि एवं सम्राट अशोक जैसे यशस्वी व्यक्तित्व का निर्माण पवित्र माताओं के द्वारा ही हुआ है। स्त्री जाति को हीनता से बचाना आवश्यक है, यदि उनमें स्वावलंबन और आत्मविश्वास पैदा नहीं होगा तो शिवाजी और महाराणा प्रताप का उद्भव नहीं हो सकता है। राष्ट्र की शक्ति संपन्नता और समृद्धि यदि उत्पादन व्यापार और उद्योगों में निहित है तो उसके संयोजनकर्ता बुद्धिमान, साहसी और व्यापारी होते हैं। इस साहस, चातुर्य और तत्परता का निर्माण स्त्रियां ही करती है। स्त्रियों की दुर्बल स्थिति के कारण बाहरी आक्रमण और दास संस्कृति है, जिससे बर्बर सामंती युग का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप भारत में उत्पादन कलाओं का विकास नहीं हुआ। विदेशी उत्पादकों का प्रभाव बढ़ता गया। राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विदेशी शक्तियों ने स्त्रियों की दुर्बल स्थिति को बनाए रखकर अपना प्रभुत्व कायम कर शोषण किया। हिंदु कोड बिल की रचना कर उन्होंने 'आधुनिक मनु' की उपाधि प्राप्त की।

4. ब्रह्मणबाद का खंडन

डॉक्टर अंबेडकर ने हिंदू धर्म के सुधार का मौलिक एवं पूर्ण समाधान का विचार किया, जिससे सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके डॉक्टर अंबेडकर ने अनेक ऐसे बंधुओं की व्यवस्था भी की जिसके माध्यम से सामाजिक वर्ग भेद को समाप्त किया जा सके। 25 दिसंबर 1927 को डॉ अंबेडकर ने सदियों से चली आ रही हिंदू कानून की पुस्तक मनुस्मृति की सार्वजनिक होली जलाई, जिससे आज तक का शोधकर्ता सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और आर्थिक दासता की जड़ समझा जाता है। इसी मनुस्मृति को जलाने के साथ डॉक्टर अंबेडकर ने सामाजिक न्याय के एक नवीन युग का सूत्रपात किया। भारतीय समाज वैदिक धर्म की मनुवादी विधान से जुड़ा हुआ था। ऊंच–नीच की भावना संपूर्ण समाज में व्याप्त थी। दलितों पर अत्याचार और व्याभिचार की कोई सीमा नहीं थी। सामाजिक न्याय के प्रणेता डॉ अंबेडकर कहा करते थे कि हिंदू दलितों का उतना ही शत्रु है, जितना भारतीयों के लिए यूरोपियन। यूरोपियन अभी तटस्थ हैं, लेकिन हिंदू दलितों के कठोर विरोधी है। अभी जितनी जरूरत है, देश की आजादी के लिए लड़ने की उससे कहीं अधिक जरूरत है, सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करने की। इसलिए अंबेडकर ने एक ओर स्वराज प्राप्ति के साथ–साथ दलितों, पिछड़ों और वंचितों के राजनीति अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष छेड़ा तो दूसरी ओर सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति का बिगुल भी फूंका। उनका कहना था कि स्वतंत्रता और समानता के अधिकार याचना से नहीं कठिन संघर्ष से प्राप्त होते हैं।

5. नैतिक धर्म

उनका मानना था कि बिना धार्मिक जागृति के मुख्य की पूर्ण प्रगति संभव नहीं है, क्योंकि मानव कल्याण, सामाजिक उत्थान एवं राजनीतिक चेतना के साथ–साथ धार्मिक चेतना तभी संभव हो सकती है, जब धर्म न्यायपूर्ण हो। डॉक्टर अंबेडकर ने धर्म की चार विशेषताएं बताइए जो निम्नलिखित है–

- धर्म नैतिकता के अर्थ में प्रत्येक समाज में शासित करने का सिद्धांत रहना चाहिए।
- धर्म को तर्क के अनुरूप होना चाहिए जो कि विज्ञान का दूसरा नाम है।
- धर्म की नैतिक संहिता में समता, स्वतंत्रता और भाईचारे के मूल सिद्धांतों को समाहित करना चाहिए। अगर धर्म सामाजिक जीवन के उपर्युक्त मौलिक सिद्धांतों को नहीं पहचानेगा तो वह धर्म अपवाद जनक हो जाएगा।
- धर्म को चाहिए कि गरीबी को मान्यता ना दें।

6. मानववादी चिंतन

डॉ अंबेडकर की शीर्ष प्राथमिकता सामाजिक न्याय था उनका मानना था कि सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के बाद आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों को हल किया जाना चाहिए। उनके अनुसार सामाजिक सुधार में परिवार व्यवस्था और धार्मिक जीवन में सुधार शामिल था। परिवारिक सुधार का मतलब बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा का अंत, विधवा पुनर्विवाह एवं अंतर्जातीय विवाह आदि है। उन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं की दुर्दशा की कड़ी आलोचना की। वे मानते थे कि सामाजिक लोकतंत्र और आर्थिक न्याय के बिना राजनीतिक लोकतंत्र का कोई मतलब नहीं है। अंबेडकर को स्वतंत्रता समानता और बंधुता के सिद्धांतों में दृढ़ विश्वास था तथा यह तीनों सिद्धांत उनकी लेखनी के मार्गदर्शी सिद्धांत थे, जबकि इन तीनों सिद्धांतों को एक त्रिनिटी में अलग–अलग नहीं माना जाना चाहिए। इस मायने में ट्रिनिटी के यूनियन का गठन करते थे कि इनमें से एक को दूसरे से अलग करना लोकतंत्र के यथार्थ उद्देश्य की पराजय होगी। वे अछूतों के लिए सामाजिक न्याय के पैगंबर थे, इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। उन्होंने दासता की गुलामी से लाखों दलितों के आत्मसम्मान को जगाया, जिनका जाति व्यवस्था के नाम पर सदियों तक शोषण किया जाता रहा। वह मूर्ख लोगों की आवाज बने और अछूतों को जाति बंधन से सदा सदा के लिए मुक्त होने के लिए वैकल्पिक दूरदर्शिता प्रदान की। धर्म परिवर्तन के द्वारा उन्होंने लोगों को जाति रहित समाज में रहने की नैतिक स्थिति प्रदान की।

7. अस्पृश्यता का विरोध तथा अछुतोद्धार

अंबेडकर ने अस्पृश्यता के निराकरण के लिए केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण ही नहीं दिए अपितु उन्होंने अपने विभिन्न आंदोलनों एवं कार्यक्रमों के द्वारा लोगों में चेतना जागृत की तथा इसके निराकरण के विभिन्न सुझाव भी प्रस्तुत किए। उन्होंने अस्पृश्यता निराकरण के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक एवं शैक्षणिक आदि संस्थानों पर रचनात्मक कार्यक्रम तथा संगठित अभियान का नेतृत्व किया। उन्होंने दलितोंद्धार के लिए कई सुझाव दिए जैसे–

- हिंदू समाज की परंपरागत मान्यताओं में परिवर्तन पर बल
- अंतरजातीय विवाह का समर्थन
- दलितों की शिक्षा संघर्ष और संगठन पर बल
- व्यवस्थापिका में दलित वर्ग के पर्याप्त प्रतिनिधित्व का समर्थन
- कार्यपालिका में पर्याप्त प्रतिनिधित्व की मांग

निष्कर्ष

अंबेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख प्रारूप कर्ता थे। उन्होंने सामाजिक न्याय से संबंधित चुनौतियों का स्वयं सामना किया था। समाज में वर्ग एवं जाति संघर्ष के परंपरागत विरोधी हितों के बीच अंबेडकर ने सफल एवं आदर्श सामाजिक न्याय की नींव रखी। जिसने सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। सामाजिक न्याय को उन्होंने राष्ट्रीयता के आधार पर स्थापित किया। प्राचीन वर्ण व्यवस्था से उपजे सामाजिक असमानता को अंबेडकर ने संवैधानिक समानता और वितरणात्मक न्याय के आधार पर संतुलित करने का प्रयास किया। डॉ. अंबेडकर के सामाजिक न्याय में एरिस्टोटलियन आर्डर, प्लेटो'ज स्कीम, गांधियन थॉट का सर्वोदय अभियान, समाजवाद, साम्यवाद और बौद्ध चिंतन का अद्भुत समन्वय है, जो बाद में भारतीय संविधान की सबसे बड़ी विशेषता साबित हुई है। उनके सामाजिक न्याय के प्रतिमानों में स्वयं मनुष्य द्वारा निर्मित असमानता जो कानून, नैतिकता, समाज और लोक हितों के क्षेत्र में उपजी है का शांतिपूर्ण निराकरण का उद्घोष है। भारतीय संविधान इनके सामाजिक न्याय का मूर्त रूप है, जिसमें पोषणकारी सामाजिक न्याय की तार्किक व्याख्या की। उनका मानना है कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो जाता है। डॉक्टर अंबेडकर मनु संहिता के वर्णाश्रम के विरोधी थे, क्योंकि यह ब्राह्मणों के लिए एक ब्लैंक चेक की तरह है, जिससे वे अपने नापाक इरादों की पुष्टि करते हैं। सामाजिक न्याय की प्रधानता वाले समाज को ही आदर्श परिस्थिति माना जा सकता है। जातिवाद और संप्रदायवाद के बीच खंडित सामाजिक न्याय की अखंड ज्योति प्रभुता और हीनता की राजनीति का दुष्परिणाम है। जो भारतीय लोकतंत्र के लिए चेतावनी के रूप में खड़ा था और जिससे धीरे–धीरे उभरने की विधि का नाम है 'अंबेडकर का सामाजिक न्याय'।

सामाजिक न्याय संबंधी अंबेडकर के योगदान को निम्न बिन्दुओं की सहायता से समझा जा सकता है

- सामाजिक अन्याय की पहचान और उनके कारणों का वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक अनुशीलन।
- सामाजिक न्याय पर आधारित विधान की रचना और उसे प्रभावी बनाने की दृष्टि से संविधान में स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान।
- सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए आंदोलन एवं सतत् संघर्ष।

दलित होने का दंश झेल कर भी भारतीय लोकतंत्र में अटूट आस्था स्थापित करने के लिए हमेशा भारत की आने वाली पीढ़ियां उनकी ऋणी रहेगी। उन्होंने सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए मनुस्मृति का दहन कर एक नए विधान (हिंदू कोड बिल)की रचना की। लोकशाही को सशक्त करने के लिए स्वतंत्रता, समानता और मैत्रीभाव पर बल दिया। यह एक ऐसी भावना है जो व्यक्ति को दूसरों की भलाई के साथ जोड़ती है। व्यक्तिवाद अराजकता को जन्म देता है। जबकि भ्रातृत्व भाव समाज में नैतिक व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करता है।

विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि विश्व में केवल बौद्ध धर्म ही एकमात्र ऐसा धर्म है, जो धर्म के वास्तविक अर्थ की कसौटी पर खरा उतरता है। यह तर्कसंगत अनुभवपरक और आचारपरक है। समाज में अन्याय था क्योंकि अज्ञान का अंधेरा था। अंधेरे से निकलने के लिए बाबा साहेब ने लोगों को बुद्ध का संदेश दिया। अप्प दीपोः भवः– 'अपना प्रकाश स्वयं बनो।' जब व्यक्ति प्रकाशमान, विवेकशील और जागरूक होंगे तो अज्ञान का अंधेरा छंट जाएगा और समाज में अन्याय के लिए कोई स्थान नहीं बचेगा।

शास्त्रीय विशेषाधिकारों और निर्योग्यताओं, जन्मजात एवं वर्गीकृत असमानताओं तथा सदियों की गुलामी आदि ऐसे तथ्य है जिसके चलते भारत में सामाजिक न्याय एक दुर्लभ और दुसाध्य लक्ष्य प्रतीत होता है। लोकशाही और नौकरशाही प्रतिबद्धता संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों एवं प्रयासों से इसकी प्राप्ति की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। लक्ष्य अभी दूर अवश्य है किंतु इसमें कोई दो राय नहीं है कि एक न्यायपूर्ण संपोषी समाज व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

शोध संदर्भ

- डॉ बाबासाहेब आंबेडकर जीवन चरित् धनंजय कीर पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली 1996
- डॉक्टर अंबेडकर और समाज व्यवस्था कृष्ण तत्व पालीवाल किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली 1996
- संपूर्ण वांग्मय खंड 7, कल्याण मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली
- डॉक्टर डीआर जाटव डॉक्टर अंबेडकर व्यक्तित्व और कृतित्व क्षमता प्रकाशन जयपुर 1988
- डॉक्टर रामगोपाल सिंह डॉक्टर अंबेडकर के सामाजिक विचार मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 1991
- डोडिया जाटव सामाजिक न्याय का सिद्धांत समता साहित्य सदन जयपुर 1993
- आरजी सिंह भारतीय दलितों की समस्या एवं उनका समाधान मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 1986
- डॉक्टर रामगोपाल सिंह सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर 2010
- हिंदू धर्म, महात्मा गांधी,नवजीवन प्रकाशन मंदिर,अहमदाबाद
- मधु लिमये डॉ. अंबेडकर : एक चिंतन, मस्तराम कपूर (अनुदित) नई दिल्ली, सरदार वल्लभभाई पटेल एजुकेशन सोसायटी। 1990